क्रियायोग विज्ञान

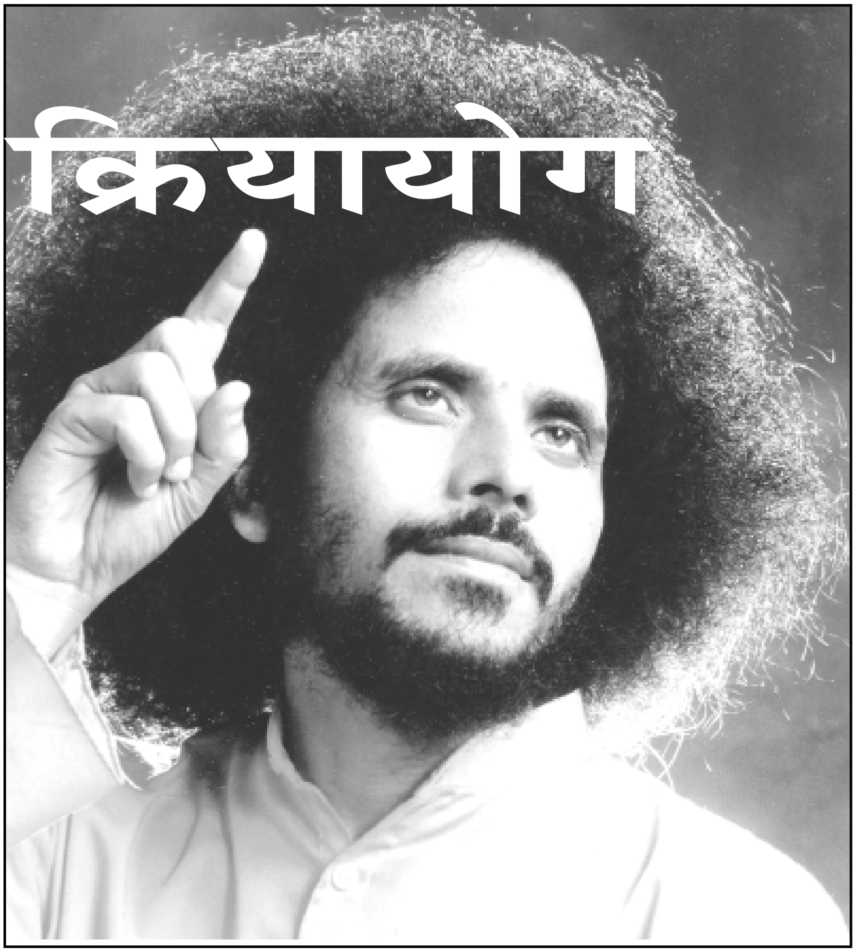

अन्तर्राष्ट्रीय क्रियायोग वैज्ञानिक
स्वामी श्री योगी सत्यम् जी

क्रियायोग

हं ★ क्षं

परमात्म अनुभूति का सर्वोच्च मार्ग

क्रियायोग विज्ञान

मानव विकास का मूलमंत्र

10 मिनट का अभ्यास - 20 वर्ष का विकास

क्रियायोग अनुसंधान संस्थान

झूँसी, इलाहाबाद ।

भारत- 011-91-532-2569243
011-91-532-2569999
011-9415217277 upto 81
011-9415235084

कनॉडा- योग फैलोशिप, 388 प्लेन्स रोड,
किचनर ऑन्टेरियो, N2 R1 R8
कनॉडा ।
001-519-696-3869

Email - **yogisatyam@hotmail.com**
Web - **kriyayoga-yogisatyam.org**

परब्रह्म की अलौकिक अभिव्यक्ति है- ‘‘क्रियायोग ध्यान’’

विषय-अनुक्रमणिका

क्रियायोग विज्ञान संक्षिप्त परिचय .

1- क्रियायोग अव्यय व सनातन स्वरूप 8

2 - क्रियायोग क्या है ? 11

3 - योग का वास्तविक स्वरूप 16

4 - अष्टाँग योग - योग के आठ पर्याय 17

5 - क्रियायोग शरीर व मन के बीच दूरी शून्य करने का विज्ञान 24

6 - क्रियायोग की शाब्दिक एवं तात्विक विवेचना ... 26

7 - क्रियायोग सुप्राचीनतम एवं नवीनतम आध्यात्मिक विज्ञान 28

8 - क्रियायोग गीता में वर्णित अग्निहोत्र, स्वाहा स्व में लीन होने पर प्राप्त होने वाले अनन्त आनन्द का प्रतीक 29

9 - क्रियायोग प्राचीन काल में वर्णित यज्ञ 32

10 - श्वाँस का व्यायाम प्राणायाम नहीं है, क्रियायोग से प्राणायाम अवस्था की प्राप्ति 35

11- क्रियायोग से आसन अवस्था की प्राप्ति 40

12- क्रियायोग प्राण व अपान वायु का हवन 41

शास्त्रों की क्रियायोगिक व्याख्या

----

1 - श्रीमद्भगवदगीता के 15 वें श्लोक की सद्व्याख्या - मानव स्वरूप अश्वत्थः उल्टा वृक्ष 43

2 - क्रियायोग से अन्तःकरण में बाइबिल के ज्ञान का अवतरण - बगीचे के बीच वाले वृक्ष के फल को न खायें 48

3- क्रियायोग की दृष्टि में रामचरितमानस 51

4 - क्रियायोग --सत्य व अहिंसा पर चलने की क्रिया 57

5 - सत्य की अनुभूति के लिए योगस्थ अवस्था की अनिवार्यता 59

6 - सम्पूर्ण बीमारियों का मूल कारण - आदतों की गुलामी 60

क्रियायोग द्वारा मृत्यु पर विजय - अद्भुत महासमाधियाँ Last Supper

----

1 - श्री श्री परमहंस योगानन्द जी का अद्भुत महासमाधि भोज 65

2- मैं अपने घर जा रहा हूँ - योगावतार श्री श्यामाचरण लाहिडी जी 67

3 - ज्ञानावतार श्री युक्तेश्वर गिरी जी की महासमाधि
.... 69

4 - यह मेरा अंतिम उत्सव समारोह है - द्विशरीर संत
स्वामी प्रणवानन्द जी 70

5 - तुम इस मंदिर को गिरा दो मैं तीन दिन में इसे पुनः
बना दूँगा - ईसा मसीह ... .72

6 - **Spiritual Interpretation Of Bible In The
Light Of Kriyayoga** 75

7 - वर्तमान युग आरोही द्वापर का 307 वाँ वर्ष .. 79

Behold Your True Self ---

You are not human
but
“Son of God. ”

क्रियायोग विज्ञान-
संक्षिप्त परिचय

क्रियायोग अव्यय- सनातन स्वरूप ...

क्रियायोग सनातन आध्यात्मिक विज्ञान है जो प्राचीनतम एवं नवीनतम स्वरूप में मनुष्य के कूटस्थ में विद्यमान है। क्रियायोग का स्वरूप अव्यय है। क्रियायोग की पुस्तकें चाहे जल कर राख हो जाय परन्तु क्रियायोग का अस्तित्व कभी भी समाप्त नहीं होगा। अन्तःकरण में परमात्मा को खोजने की गहन प्यास जागृत होने पर मानव मस्तिष्क के अंदर क्रियायोग का ज्ञान स्वतः प्रकाशित हो जाएगा।

क्रियायोग की महिमा अनन्त है। दिन-रात, प्रकाश-अंधकार, कलियुग-सतयुग, ज्ञान-अज्ञान के क्रमिक आगमन और गमन से क्रियायोग के शाश्वत् स्वरूप पर कोई प्रभाव नही पड़ता है। क्रियायोग समत्व का रूप है जो दिन व रात के परिवर्तन, काल चक्र के परिवर्तन, ज्ञान व अज्ञान के परिवर्तन से प्रभावित नही होता है।

क्रियायोग के अभ्यास से साधक स्वयं को अव्यय, अमर, सनातन अस्तित्व के रूप में पहचान लेता है। ऐसी अवस्था में ब्रह्माण्ड की प्रत्येक रचनाओं के अमर स्वरूप का दर्शन होता है।

आधुनिक युग के योगावतार श्री श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय जी ने स्पष्ट किया है-

''क्रियायोग परब्रह्म का स्वरूप है । क्रियायोग का अभ्यास ही यज्ञ है, वेदपाठ है । यह यज्ञ सभी को करना चाहिए । ''

आज कल प्रचलित यज्ञ, तप, नाम जप, उल्टा नाम जप, मंत्र साधना, तंत्र साधना, राज योग, कर्म योग, भक्ति योग, ज्ञान योग, लय योग, गायत्री मंत्र का अभ्यास, उपनयन संस्कार आदि प्रतीकात्मक आध्यात्मिक अभिव्यक्ति है, इसका वास्तविक स्वरूप क्रियायोग का अभ्यास है । समस्त साधनाओं का मौलिक स्वरूप एक है । काल के प्रभाव से मानव मस्तिष्क मे ज्ञान का लोप होने पर पूजा पद्धतियों तथा साधनाओं के स्वरूप का अधिकांश भाग प्रतीक के रूप में रह गया है तथा उस प्रतीक के पीछे छिपी वैज्ञानिकता तथा सूक्ष्म साधना का ज्ञान लुप्त हो गया है । पूजाओं और साधनाओं का प्रतीकात्मक स्वरूप गलत नही है परन्तु प्रतीक को सत्य मान लेना गलत है । आज आवश्यकता है कि हम प्रतीक का सम्मान देने के साथ ही साथ उसमें निहित सत्य को भी खोजें ।

क्रियायोग समस्त साधनाओं, पूजाओं में निहित सत्य का साक्षात्कार करने का विज्ञान है । क्रियायोग अभ्यास के द्वारा साधक, साधन व साध्य के बीच दूरी की शून्यता स्थापित होने पर मनुष्य सत्य का दर्शन कर लेता है । ऐसी स्थिति में उसकी द्वैत दृष्टि अद्वैत दृष्टि में रूपान्तरित हो जाती है । अद्वैत दृष्टि के प्रकट होने पर साधक दो की उपस्थिति का अनुभव नही करता है । उसे अनुभव हो जाता है कि ब्रह्माण्ड की समस्त रचनाओं का मौलिक स्वरूप एक है । एक परमतत्व अनन्त रूपों में ठीक उसी प्रकार प्रकाशित हो रहा है जिस प्रकार एक बीज जड़, तना, पत्तियाँ, पुष्प, फल आदि के रूप में प्रकट होता है ।

क्रियायोग ध्यान से अन्तःकरण में पूर्ण शिक्षा का अवतरण

‘क्रियायोग’ क्या है ?

1- क्रियायोग मानव के अंदर उन विचारों व भावनाओं का सृजन करता है जिससे मनुष्य चिर स्वास्थ्य व अखण्ड शांति का अनुभव करते हुए अपने अमर अस्तित्व की अनुभूति में निरन्तर बना रहता है । क्रियायोग अभ्यास मनुष्य में छिपी हुई अनन्त शक्ति युक्त जीवनी शक्ति का शाश्वत् दीप प्रज्जवलित कर देता है । इस अवस्था में सुख-दुःख, बीमारी-स्वास्थ्य, जीवन-मृत्यु आदि सब कुछ स्वप्न है, अनुभव होता है ।

2- क्रियायोग ध्यान में शाश्वत् एकता के भाव व विचार प्रकट होते हैं जो मानव मस्तिष्क से जाति भेद, रंग भेद, साम्प्रदायिक-धार्मिक भेद भाव को पूरी तरह मिटा देता है । ऐसी स्थिति में मनुष्य का हृदय, मन व बुद्धि तत्व सभी जीव-जन्तुओं के हृदय, मन व बुद्धि से संयुक्त हो जाता है । इस अवस्था में पहुँचते ही मनुष्य को एकोऽहम्बहुष्यामि सत्य की अनुभूति होती है ।

3- गहरी नींद की परम आवश्यकता उन्हें होती है जो जागृत व स्वप्न की स्थिति में द्वन्दात्मक विचारों के माध्यम से कार्य करते हैं । यह पाप है, वह पुण्य है, यह अपना है, वह पराया है, यह सुख देगा, वह दुःख देगा आदि विचारों से जुड़कर जब आदमी घर व घर के बाहर कार्य करता है, तब उसे गहरी नींद की बहुत आवश्यकता पड़ती है । सोचिए ऐसा क्यों? गहरी नींद में मनुष्य एकता के शाश्वत् नियम में स्थित होता है । वह अहंकार के माया जाल से मुक्त रहता है । यहाँ अहंकार के माया जाल से तात्पर्य है मुनष्य का अपनी विशेष पहचान बनाना । शरीर की उम्र, शरीर का रूप-रंग, जाति और धर्म, पारिवारिक संबंध- माता-पिता, भाई-बन्धु, पति-पत्नी आदि, साम्प्रदायिक धार्मिक भाव- हिन्दु, मुस्लिम, ईसाई आदि, सामाजिक पद-प्रतिष्ठा, अपमान, लिंग भेद- स्त्री-पुरुष आदि के रूप में अपने को पहचानना मनुष्य का अहंकार के माया जाल में फँसना है ।

क्रियायोग के अभ्यास से गहरी नींद में अनुभव की गयी समता जागृत अवस्था में प्राप्त हो जाती है । ऐसी अवस्था में जिस सुख शांति की प्राप्ति होती

है उसे लिखकर या कहकर व्यक्त नहीं किया जा सकता है । अगर लिखकर या कहकर व्यक्त करना ही पड़े तो पूर्ण समता की स्थिति को अहम्ब्रह्मास्मि की स्थिति कहते हैं । अहम्ब्रह्मास्मि की स्थिति में ही एकोऽहम्बहुष्यामि की अनुभूति होती है।

शाश्वत् समता की अनुभूति होने पर मनुष्य में हिंसा का मायावी भाव विलुप्त हो जाता है और वह सत्य व अहिंसा के शाश्वत् अमर अस्तित्व में स्थापित है, का बोध हो जाता है । ऐसी स्थिति में सेना, पुलिस, शासन, प्रशासन व न्यायाधीश का रूप बदल जाता है । सभी एक दूसरे को ईश्वर की उपस्थिति के रूप में स्वागत करते हैं ।

4- क्रियायोग ध्यान से यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य के द्वारा किये गए सम्पूर्ण कर्म से प्राप्त अद्वितीय उपलब्धि से मनुष्य का अस्तित्व अनन्त गुना अधिक श्रेष्ठ है । अनादि काल से प्रवाहित हो रहे वेद, शास्त्र के सूत्र, मंत्र, विज्ञान और पराविज्ञान के सारे नियम आदि सब कुछ मानव के अंदर से बाहर की तरफ उसी तरह प्रवाहित होते रहे हैं जैसे हिमालय से पावन गंगा की अविरल धारा ।

5- क्रियायोग ध्यान में स्थित हो जाने पर पता चलता है कि अतीत, वर्तमान और भविष्य के बीच दूरी शून्य है । जिसे वर्तमान कहते हैं, वह अतीत का पूर्ण स्वरूप है और भविष्य का पूर्ण गर्भ है । क्रियायोग ध्यान से मनुष्य स्वतः बिना प्रयास के अनन्त की यात्रा करने लगता है जिसे प्रचलित भाषा में परमात्मा में भक्ति का विस्तार कहते हैं ।

6- क्रियायोग ध्यान में स्थित हो जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि बीमारी, सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु आदि स्वप्न है और साथ ही साथ सत्य की स्पष्ट अनुभूति हो जाती है । सत्य क्या है? को स्पष्ट करना वैसे ही अत्यन्त कठिन है जिस प्रकार समुद्र में कितना बूँद पानी है, को गिनना कठिन है । सत्य अनुभूति में स्पष्ट अनुभव होता है कि पूरा दृश्य व अदृश्य जगत एक परम तत्व का व्यक्त स्वरूप है । उसी परमतत्व को परब्रह्म, सर्वव्यापी परमात्मा कहते हैं । यह स्पष्ट हो जाता है कि परब्रह्म

सर्वशक्तिमान व सर्वज्ञ हैं तथा उनके लिए कुछ भी असंभव नहीं है। वह स्वयं 24 तत्वों के रूप में प्रकाशित हैं। वे 24 तत्व इस प्रकार हैं- महततत्व (चित्त या हृदय तत्व), अहंकार तत्व (जीव), बुद्धि, मन, कर्ण ज्ञानेन्द्रिय, त्वक् (त्वचा) ज्ञानेन्द्रिय, नेत्र ज्ञानेन्द्रिय, जिह्वा (स्वाद) ज्ञानेन्द्रिय, नाक (घ्राण) ज्ञानेन्द्रिय, वाक (कण्ठ) कर्मेन्द्रिय, हस्त (हाथ) कर्मेन्द्रिय, पद् (पैर) कर्मेन्द्रिय, प्रजनन कर्मेन्द्रिय, गुदाद्वार (मल निष्कासन) कर्मेन्द्रिय, पँच तन्मात्रा, पँच स्थूल तत्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) इत्यादि। इसी सत्य की अनुभूति को व्यक्त किया जाता है एकोऽहम्बहुष्यामि के रूप में।

नोट- इसे समझने के लिए चित्र नम्बर 1, 2 और 3 पर ध्यान दें। चित्र को समझने के लिए प्रत्यक्ष क्रियायोग कक्षा में भाग लेना अनिवार्य है। इसे शब्दों में पूर्णतया व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

चित्र नम्बर 1

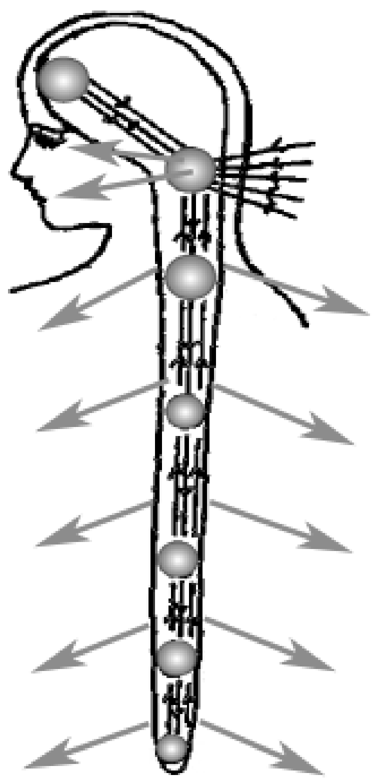

प्राणशक्ति के बहिर्गमन से अंधा मन क्रियाशील होता है ।

चित्र नम्बर 2

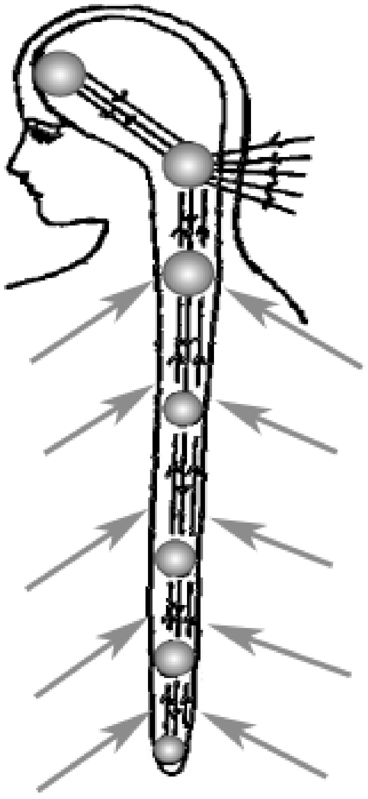

प्राणशक्ति के उर्ध्वगमन
से जागृत बुद्धि
क्रियाशील होती है।

चित्र नम्बर 3

क्रियायोग साधना के द्वारा प्राणशक्ति के उर्ध्वमुखी प्रवाह से सीमित शक्ति का असीमता में रूपान्तरण

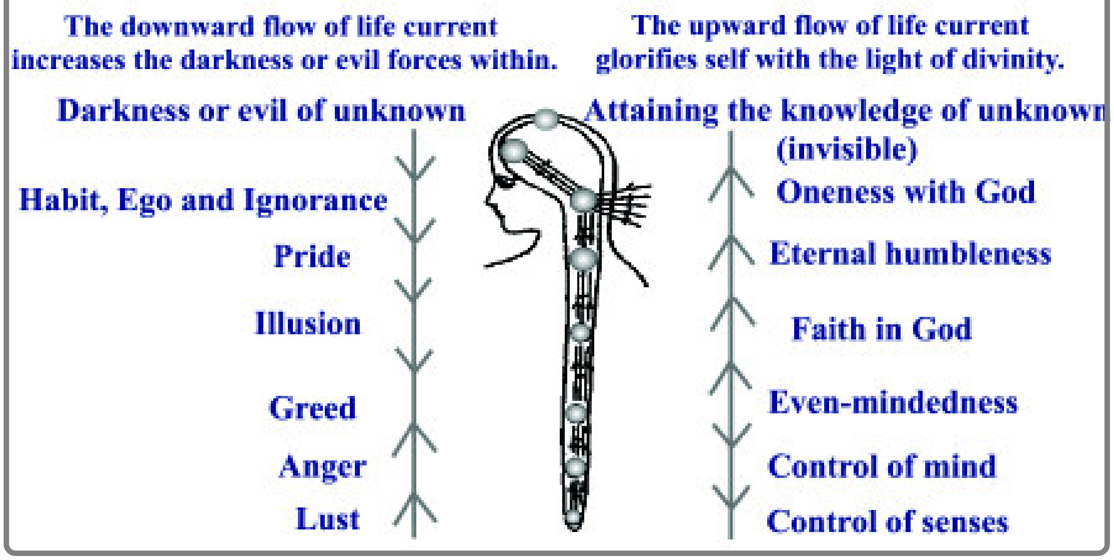

7- क्रियायोग ध्यान से स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्माण्ड की प्रत्येक रचना में वह सभी तत्व स्थित हैं जिससे आवश्यकतानुसार कुछ भी प्रकट किया जा सकता है। आकाश तत्व से प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वाइटमिन्स, मिनरल्स, वसा, जल, अग्नि, प्रकाश, ठोस, द्रव, गैस, वनस्पति जगत, जन्तु जगत व मानव आदि को आवश्यकतानुसार प्रकट व अदृश्य किया जा सकता है। यही कारण है कि क्रियायोग के अभ्यास में जिसको परम आनन्द की प्राप्ति होती है उसको किसी भी प्रकार के पोषक तत्वों की कमी नहीं होती है।

8- क्रियायोग के अभ्यास से स्पष्ट अनुभव होता है कि मानव स्वरूप एक पूर्ण अस्तित्व है। अपने स्वरूप में एकाग्रता बढ़ाने से मनुष्य सम्पूर्ण दृश्य व अदृश्य जगत के साथ पूर्ण एकता की अनुभूति करता है । यहाँ एकता का अभिप्राय है दूरी की शून्यता । ऐसी स्थिति में मनुष्य अपने स्वरूप का रूपान्तरण किसी भी आकार में करने में समर्थ होता है । वह जब चाहे पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, मानव आदि स्वरूप में प्रकट हो सकता है । अनेक आत्मज्ञानी ऋषि-मुनि इसी तरह से प्रकट होते रहते हैं ।

क्रियायोग के अभ्यास में अपनी रुचि बढ़ाते जाइए और इतना अभ्यास करिए कि क्रियायोग का अभ्यास आनन्द की अनुभूति बन जाय फिर जिस चीज की जहाँ आवश्यकता होगी वह चीज वही प्रकट हो जाएगी । पूरा विश्वास रखिए कि अगर पैसे की आवश्यकता पड़ी तो परब्रह्म पैसे के रूप में भी प्रकट हो जाएँगे ।

9- क्रियायोग ध्यान ईश्वरानुभूति की वैज्ञानिक प्रणाली है । इसका सभी देशों में प्रसार निरन्तर बढ़ेगा । इससे मनुष्य अपने अंदर सर्वव्यापी कूटस्थ में स्थापित होकर सभी मनुष्य के हृदय क्षेत्र से जुड़ जाता है और आवश्यकतानुसार सभी की सेवा करने में पूर्ण सफल हो जाता है । ऐसे ही सफल व्यक्ति देश के न्यायाधीष, शासक व प्रशासक होंगे जिनके अंदर दिव्य माँ का ममत्व होगा ।

10- क्रियायोग ध्यान में अतीत, वर्तमान और भविष्य के वे समस्त स्वरूप अनुभव होते हैं जिससे मनुष्य को अपने सर्वव्यापी अस्तित्व का ज्ञान हो जाता है । इसी

अवस्था को ईसा मसीह ने जब अनुभव किया तो उन्होंने कहा कि हमारे व परमात्मा के बीच दूरी शून्य है, योगेश्वर श्री कृष्ण ने कहा कि सब मुझमें हैं और मैं सबमें हूँ । भगवान श्री राम ने कहा कि सभी रूपों में मुझे ही देखो । आधुनिक युग के योगावतार श्री श्यामाचरण लाहिड़ी ने कहा कि मैं ही किशुन हूँ, मैं ही ब्रह्म हूँ । ज्ञानावतार परमहंस श्री युक्तेश्वर गिरी जी ने स्पष्ट घोषणा किया कि पूरा ब्रह्माण्ड परब्रह्म का व्यक्त रूप है । प्रेमावतार श्री परमहंस योगानन्द जी ने कहा है कि मैं ही सर्वव्यापी ज्ञानतत्व हूँ । हमारे व परमात्मा के बीच वही संबंध है जो लहर व समुद्र के बीच है ।

क्रियायोग को इतना सीखिए कि 24 घण्टा जागृत, स्वप्न और गहरी नींद की स्थिति में क्रियायोग के चैतन्यपूर्ण अभ्यास में प्रतिपल रह सकें ।

11- क्रियायोग ध्यान में स्थित होने पर अन्तःकरण में शास्त्रों की वास्तविक व्याख्या प्रकट होती है । उदाहरणार्थ- **अष्टाँग योग की संक्षिप्त क्रियायोगिक व्याख्या स्पष्ट किया जा रहा है ।**

योग का वास्तविक स्वरूप

योग का अभ्यास नहीं किया जा सकता है । योग मानव विकास की उच्चतम अवस्था है जिसमें मनुष्य दूरी (कठिनाई) तथा समय (काल) की अनुभूति के परे होता है । योग अवस्था की प्राप्ति के लिए जिस साधना (क्रिया) का अभ्यास करना पड़ता है, उसे क्रियायोग कहा गया है ।

योग अवस्था के प्रकट होने पर साधक अपने तथा आदि, मध्य, अंत के बीच दूरी की शून्यता का अनुभव कर लेता है । ऐसी अवस्था में काल का विभाजन समाप्त हो जाता है । समय को भूत, भविष्य और वर्तमान में बाँटना, अज्ञानता का

प्रतीक है । वास्तव में समय अविभाजित है तथा इसी प्रकार ब्रह्माण्ड की समस्त रचनाएँ भी अविभाजित हैं ।

क्रियायोग साधना के द्वारा योग अवस्था के प्रकट होने पर आदि, मध्य, अंत एक विन्दु पर दिखायी देता हैं जिससे आदि, मध्य व अंत तीनों अलग-अलग न होकर, एक में रूपान्तरित हो जाते हैं । इसी को वर्तमान में रहना कहा गया है । वर्तमान में रहने का अभिप्राय भूत व भविष्य को विस्मृत करना नहीं बल्कि भूत, भविष्य के सम्पूर्ण रहस्यों का ज्ञान प्राप्त कर लेना है जिससे भूत व भविष्य का स्वरूप वर्तमान में रूपान्तरित हो जाय । योग अवस्था को ही अविभाज्य अवस्था, अखण्डित अवस्था, युक्तावस्था, योगस्थ अवस्था आदि अनेक रूपों में वर्णित किया गया है ।

योग अवस्था के प्रकट होने पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अविभाजित है, किसी भी रचना का विभाजन संभव नहीं है, इसका स्पष्ट ज्ञान हो जाता है । यह अनुभव हो जाता है कि सारी रचनाएँ एक दूसरे से शाश्वत् रूप में जुड़ी हैं, जिस प्रकार आग से आग की गर्मी को अलग नहीं किया जा सकता है ठीक उसी प्रकार किसी भी रचना को किसी से अलग नहीं किया जा सकता है । इस शाश्वत् एकता को मानसिक बौद्धिक तर्क-वितर्क के द्वारा नहीं समझा जा सकता है बल्कि क्रियायोग गहन अभ्यास के द्वारा अनुभव किया जा सकता है ।

अष्टाँग योग ... योग के आठ पर्याय

क्रियायोग के अभ्यास से साधक के अंदर 'योग' अपने आठ अंगों के साथ प्रकट होता है जिसे अष्टाँग योग कहा गया है । अष्टाँग योग का प्राय: गलत अर्थ लगाया जाता है । साधना के अभाव में कल्पना के द्वारा अष्टाँग योग को योग की आठ सीढ़ियों के

रूप में समझा जाता है । यह मान्यता है कि पहले यम, नियम का अभ्यास करिए फिर आसन सिद्ध करिए । यह स्थिति होने के बाद ही प्राणायाम का अभ्यास किया जा सकता है । प्राणायाम के बहुत दिनों के अभ्यास के बाद प्रत्याहार, धारणा व ध्यान को साधिए तत्पश्चात् समाधि की प्राप्ति होती है । अष्टाँग योग के प्रति यह धारणा कपोल कल्पित है । प्रयोग करने पर यह पूरी तरह गलत सिद्ध होती है । अष्टाँग योग में वर्णित यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि आठ अवस्थाएँ योग स्थिति को समझने के आठ तरीके हैं । जिस प्रकार पानी को जल, वॉटर, डाईहाइड्रोजन मोनोऑक्साइड आदि के रूप में व्यक्त किया जाता है ठीक उसी प्रकार योग अवस्था को यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि के रूप में वर्णित किया गया है ।

योग का अभ्यास नहीं किया जा सकता है । इसको समझने के लिए डॉक्टर व इंजीनियर की स्थिति को समझें । कोई भी यदि कहता है कि हम डॉक्टर या इंजीनियर पढ़ रहे हैं तो इस प्रकार बोलने को अशिक्षा कहा जाता है । हम कुछ सीख रहे हैं जिसको सीखने के बाद हम डॉक्टर या इंजीनियर बन जाएँगे, इस प्रकार की अभिव्यक्ति शिक्षित होने का प्रमाण है । ठीक इसी प्रकार योग का अभ्यास कर रहे हैं, यह कहना अनुचित है । हम जो कुछ अभ्यास कर रहे हैं इससे योग अवस्था की प्राप्ति होगी, यह कहना उपयुक्त है ।

योग की अवस्था को विभिन्न तरीकों से प्राप्त किया जा सकता है । धर्मग्रन्थों का कथन है कि प्राकृतिक रूप में योग अवस्था को प्राप्त करने में लगभग 10 लाख वर्ष व्याधिरहित जीवन अनिवार्य है । क्रियायोग के अभ्यास से साधक अपनी भक्ति के अनुरूप एक ही जीवन काल के कुछ वर्षों में योग अवस्था की प्राप्ति कर लेता है । जिस प्रकार योग का अभ्यास नहीं किया जा सकता है ठीक उसी प्रकार अष्टाँग योग का भी अभ्यास नहीं किया जा सकता है । योग तथा अष्टाँग का स्वरूप एक है ।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावावङ्गानि॥

---पतंञ्जलयोगदर्शनम्- साधनपाद- 2:29

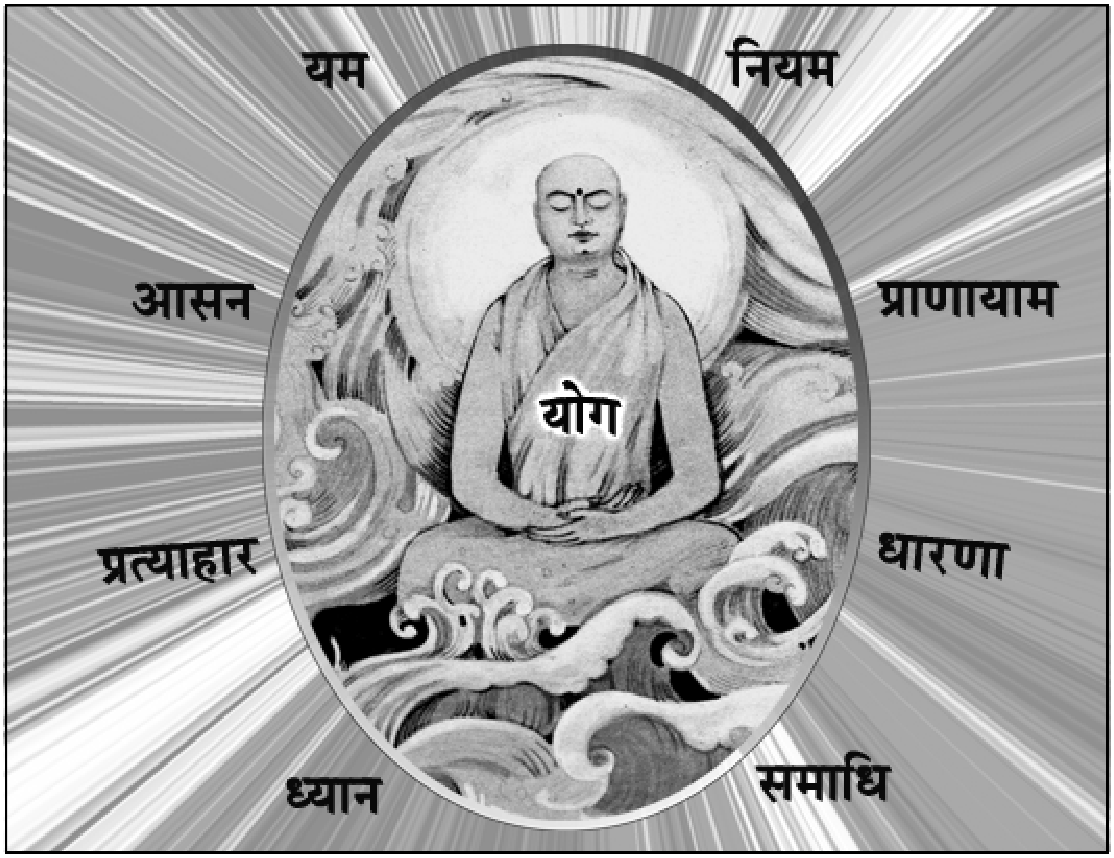

योग का अभ्यास नहीं किया जा सकता है । क्रियायोग के अभ्यास से साधक के अंदर योग अपने आठ अंगों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) के साथ प्रकट होता है ।

अष्टाँग योग का अभिप्राय है योग के आठ अंग । योग का अभिप्राय है ज्ञान की वह स्थिति जिसमें दूरी की शून्यता अनुभव होती है । दूरी की शून्यता ही अद्वैत की स्थिति है । इससे स्पष्ट है कि योग की अवस्था को अद्वैत की अवस्था कहते हैं । इस

अवस्था को आठ तरह से समझा जा सकता है जिसे अष्टाँग योग कहते हैं ।

1- यम- यम योग की अवस्था है । यम को पाँच तरीके से समझ सकते हैं । वे पाँच तरीके हैं- सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह व अस्तेय ।

सत्य- सत्य की अनुभूति ही यम की अवस्था है । सत्य अनुभव होने पर मनुष्य पूर्ण स्वतंत्रता की अनुभूति करता है । स्वतंत्रता की अवस्था को ही सर्वव्यापकता की स्थिति कहते हैं । आध्यात्मिक क्षेत्र में इसे ही राजा का स्वरूप कहा गया है । इसलिए यम की अवस्था वास्तविक राजा के स्वरूप की अवस्था है । इस अवस्था को प्राप्त करने को यमराज की स्थिति कहते हैं । इस स्थिति में जीवन व मृत्यु मनुष्य के अधीन होता है । इसे समझ लेने पर शास्त्रों में वर्णित यमराज के पीछे वास्तविक भाव स्पष्ट हो जाता है ।

अहिंसा- अहिंसा का अभिप्राय है हिंसा का अभाव अर्थात् आधि-व्याधि, बीमारी, चिन्ता व मृत्यु का अभाव । मृत्यु का अभाव ही सत्य की उपस्थिति है । अत: सत्य व अहिंसा एक ही अवस्था को व्यक्त करते हैं ।

ब्रह्मचर्य- ब्रह्म के नियमों का आचरण ही ब्रह्मचर्य है । ब्रह्मा का अस्तित्व अमर है । अमरता भाव की स्थायी अनुभूति ही ब्रह्मचर्य की अवस्था है । अमर अस्तित्व को ही अहिंसा की स्थिति कहते हैं । अत: अहिंसा व ब्रह्मचर्य एक ही भाव को स्पष्ट करते हैं । अब यह स्पष्ट है कि सत्य, अहिंसा व ब्रह्मचर्य एक ही भाव को व्यक्त करते हैं ।

अपरिग्रह- संग्रह प्रवृत्ति का अभाव ही अपरिग्रह है । संग्रह प्रवृत्ति का अभाव तभी संभव है जब मनुष्य अपने स्वरूप को ब्रह्म के रूप में अनुभव कर ले । इस स्थिति में मनुष्य को सर्वव्यापकता की अनुभूति होती है । सर्वव्यापकता की स्थिति में संग्रह व चोरी संभव नहीं है इसलिए अपरिग्रह व अस्तेय दोनों एक ही भाव को व्यक्त करते

हैं ।

अस्तेय- अस्तेय अचौर्य की अवस्था है । अचौर्य का अभिप्राय है चोरी का अभाव । अस्तेय स्थिति तभी संभव है जब मनुष्य के पास सब चीजें हर समय उपलब्ध हों । योग की अवस्था में मनुष्य अपने सर्वव्यापी अस्तित्व की अनुभूति में होता है । इस स्थिति में चोरी व संग्रह संभव नहीं है । इसलिए योग, अपरिग्रह व अस्तेय तीनों एक ही भाव को व्यक्त करते हैं । अब यह पूरी तरह स्पष्ट है कि सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह व अस्तेय पाँचों एक ही भाव को व्यक्त करते हैं और वही यम है, वही अद्वैत है और वही योग है ।

नियम- शौंचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।।

--- पतंञ्जलयोगदर्शनम् -साधनपाद- 2:32

2- नियम- शौंच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधानानि यह पाँच एक भाव को व्यक्त करते हैं जिसे नियम कहते हैं । सुख व दुःख की स्थिति को एक परमतत्व का स्वरूप समझना ही समत्व का बोध होना है और यही तप की अवस्था है । मनुष्य जब द्वैत में स्थित होता है वह सुख तथा दुःख दो स्थितियों का बोध करता है । इसके विपरीत क्रियायोग साधना में जब मनुष्य अद्वैत भाव का अनुभव करता है तब सुख व दुःख परमानन्द तत्व के रूप में अनुभव होता है । अद्वैत भाव ही योग की अवस्था है, इसलिए तप योग की अवस्था है । इस स्थिति में मनुष्य पूर्ण संतुष्ट रहता है जिसे संतोष कहते हैं ।

शौंच, संतोष, तप, स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधानानि- शौंच अवस्था पूर्ण पवित्र स्थिति है । तप की स्थिति में ही मनुष्य पूर्ण पवित्रता की अनुभूति करता है इसलिए तप और शौंच दोनों एक ही भाव को व्यक्त करते हैं । ऐसी स्थिति में अपने विषय में मनुष्य को पूर्ण ज्ञान होता है । अपने विषय में ज्ञान को ही स्वाध्याय की अवस्था कहते है । अपने विषय में ज्ञान होने से ब्रह्म का ज्ञान होता है इसलिए ब्रह्म की अनुभूति व आत्मअनुभूति एक ही भाव को व्यक्त करता है । अब यह स्पष्ट है कि तप, स्वाध्याय, ब्रह्मनिधानानि एक ही भाव को व्यक्त करते हैं और इसी को नियम कहते हैं । नियम स्थिति में अपने व ब्रह्म के बीच दूरी की शून्यता का बोध होता है । इसे ही योग की

अवस्था कहते हैं । अब स्पष्ट है कि यम व नियम योग (अद्वैत) की अवस्था को ही व्यक्त करते हैं । प्राचीन भारत में उपरोक्त वर्णित नियम में स्थित होने के लिए ही सम्पूर्ण शिक्षा दी जाती थी ।

3- आसन- स्थिर सुखम इति आसनम् । सुख की स्थिर अवस्था को आसन कहा गया है । सुख की स्थिर अवस्था को ही समत्व भी कहते हैं । समत्व की अवस्था ही अद्वैत (योग) है । इस तरह स्पष्ट है कि यम, नियम व आसन तीनों जिस भाव को व्यक्त करते हैं, उसे योग कहते हैं ।

4- प्राणायाम- प्राण के आयाम का सम्पूर्ण ज्ञान ही प्राणायाम है । यहाँ आयाम का अभिप्राय है प्राण की रचना व गुणधर्म । प्राण का स्वरूप क्या है और इसका गुण क्या है? आदि का ज्ञान ही प्राणायाम का ज्ञान है । प्राण को ही जीवन कहते हैं और जीवन ही ब्रह्म का रूप है । ब्रह्म के स्वरूप में स्थित होना ही ब्रह्मचर्य है । प्राणायाम का ज्ञान ही ब्रह्मचर्य का ज्ञान है । स्पष्ट है कि प्राणायाम व ब्रह्मचर्य दोनों एक ही भाव को प्रकट करते हैं ।

5- प्रत्याहार- आदि और अंत के बीच की दूरी की शून्यता की अवस्था को प्रत्याहार कहते हैं । इस तरह प्रत्याहार योग की अवस्था को व्यक्त करता है । ऐसी स्थिति में इन्द्रियों और मन पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त होता है । प्रत्याहार की स्थिति में मनुष्य इन्द्रियों, मन व बुद्धि को इच्छानुसार निष्क्रिय व क्रियाशील करने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है ।

6- धारणा- किसी भी वस्तु के प्रति सद्भाव (सच्ची भावना) को धारणा कहते हैं । जैसे- ब्रह्माण्ड की प्रत्येक रचनाएँ परब्रह्म का रूप हैं । यहाँ पर प्रत्येक रचना के पीछे सच्ची भावना यह है कि वह वस्तु परब्रह्म का व्यक्त रूप है । परब्रह्म ही सत्य है और उनका स्वरूप अमर है । अब स्पष्ट है कि सत्य अहिंसा तत्व में एकाग्रता की अवस्था ही धारणा की स्थिति है । ऐसी स्थिति में मनुष्य का स्वरूप

सत्य व अहिंसा का स्वरूप हो जाता है जिसे योग की अवस्था कहते हैं ।

7- ध्यान- किसी वस्तु में एकाग्रता की तीव्रता व विस्तार इस तरह से हो कि उस वस्तु का स्वरूप अनन्त है, का बोध होना ध्यान है । इसी अवस्था को निर्विकल्प समाधि कहते हैं । यही योग की अवस्था है ।

8- समाधि- सत्य में पूरी तरह स्थापित हो जाना ही समाधि है । यही ईश्वर से एकाकार की अवस्था है । इसी अवस्था को निर्विकल्प समाधि की अवस्था कहते हैं ।

उपरोक्त संक्षिप्त व्याख्या को ध्यान से समझने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि एक ही भाव को प्रकट करते हैं जिसे योग या अद्वैत कहते हैं ।

12- क्रियायोग शरीर मन के बीच दूरी शून्य करने का विज्ञान

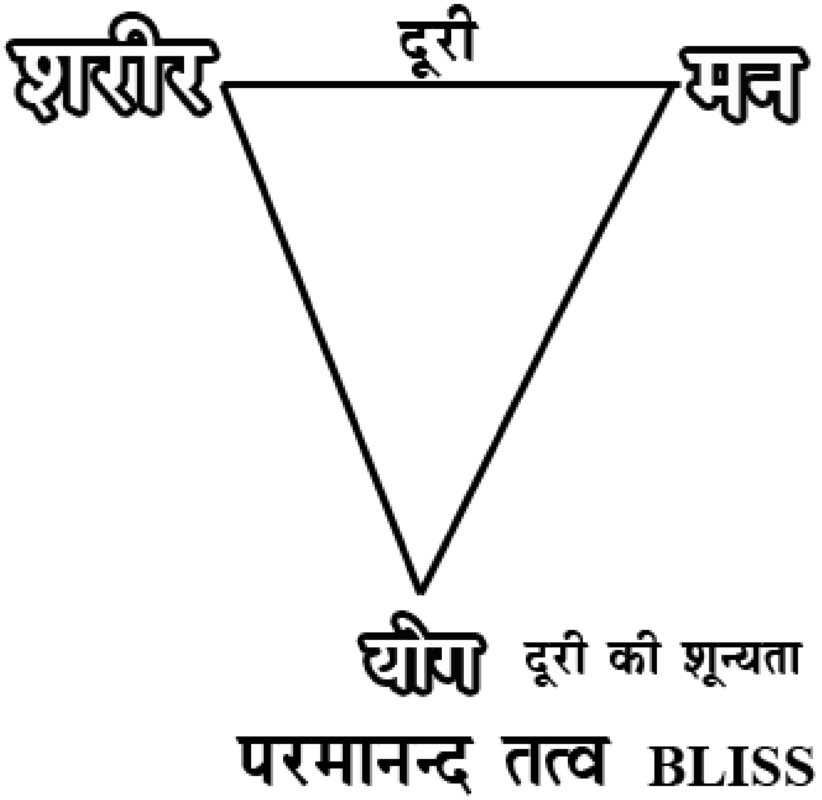

क्रियायोग, शरीर व मन के बीच दूरी शून्य करने का विज्ञान है। शरीर व मन के बीच दूरी शून्य होने पर शरीर व मन दोनों दो अलग-अलग तत्वों के रूप में नहीं अनुभव होते हैं बल्कि दोनों एक तत्व हैं, का अनुभवजन्य ज्ञान प्राप्त होता है। उसी एक तत्व को सत्, नित्य, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, परमतत्व, परब्रह्म, परमात्म तत्व आदि अनेक रूपों में वर्णित किया गया है। शरीर व मन के बीच दूरी की शून्यता का प्रकट होना योग की अवस्था है। योग अवस्था को अद्वैत अवस्था

कहा गया है । योग अवस्था के प्रकट होने पर द्वैत अर्थात् दो की उपस्थिति जिसे असत् , माया, अविद्या, अज्ञान कहा गया है, का लोप हो जाता है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक ही परमचैतन्य परमात्मा का प्रकाश है, का अनुभव हो जाता है । ऐसी अवस्था में साधक को शाश्वत् सुख जिसे परमानन्द, नित्य नवीन आनन्द कहा गया है, की प्राप्ति होती है ।

शरीर व मन के बीच दूरी की शून्यता के प्रकट होने पर माया का लोप हो जाता है । माया को अविद्या, अज्ञान कहा गया है । माया के प्रभाव से असत्, सत्य के रूप में, अज्ञान, ज्ञान के रूप में व अविद्या, विद्या के रूप में अनुभव होता है । माया के प्रभाव से जो अविभाजित है वह विभाजित दिखायी पड़ता है । शरीर व मन के बीच दूरी शून्य होने का अर्थ है माया का शून्य होना व सत्य का प्रकट होना ।

क्रियायोग साधना के द्वारा शरीर व मन के बीच दूरी की शून्यता स्थापित होने पर यह स्पष्ट हो जाता है आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, मानव, देवी-देवता आदि समस्त रचनाएँ अलग-अलग नही हैं बल्कि एक ही तत्व का अनेक रूपों में प्रकटीकरण है । जिस प्रकार समुद्र अनेक लहरों के रूप में प्रकट होता है, लहर का स्वरूप चाहे छोटा हो या बड़ा, भारी हो या हल्का ... वह समुद्र का ही व्यक्त रूप है ठीक उसी प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अर्थात् दृश्य व अदृश्य जगत सर्वव्यापी परब्रह्म का व्यक्त रूप है ।

शरीर व मन के बीच दूरी की शून्यता अनुभव करने का प्रयत्न द्वैत से अद्वैत की यात्रा है ...

यात्रा की पूर्णता में मनुष्य को स्पष्ट अनुभव हो जाता है कि हमारे व परमात्मा के बीच दूरी शून्य है जिसे अह्मब्रह्मास्मि की अवस्था कहते हैं । शरीर व मन के बीच दूरी की शून्यता के परम लक्ष्य के सिद्ध होने पर माया-ब्रह्म, जीव-प्रकृति, जड़-चैतन्य, साकार-निराकार, दृश्य-अदृश्य आदि का सम्पूर्ण रहस्य उद्घाटित हो जाता है । ऐसी अवस्था में मनुष्य के लिए कुछ भी अज्ञात नहीं रह जाता है । इसी अवस्था

को मोक्ष कहते हैं । मोक्ष की प्राप्ति ही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है ।

क्रियायोग विज्ञान ...

13 - क्रियायोग की शाब्दिक एवं तात्विक विवेचना ...

''क्रियायोग'' शब्द क्रिया और योग के संयोग से बना है । क्रिया का अभिप्राय सम्पूर्ण क्रियाओं से है जो स्वरूप तथा ब्रह्माण्ड में घटित हो रही हैं तथा योग का अभिप्राय दूरी की शून्यता से है । क्रियायोग सम्पूर्ण क्रियाओं से दूरी की शून्यता स्थापित करने का विज्ञान है ।

क्रियायोग के अभ्यास में साधक सर्वप्रथम निकटतम क्षेत्र अर्थात् पैर की अँगुली से सिर तक मानव के दृश्य रूप में प्रकट होने वाली क्रियाओं से जुड़ने का अभ्यास करता है । यहाँ पर स्वरूप में प्रकट होने वाली क्रियाओं का अभिप्राय शरीर में प्रकट होने वाले विभिन्न परिवर्तनों से है जिसे हम कड़ापन-ढ़ीलापन, दर्द-आराम, हल्कापन-भारीपन, सुस्ती, थकावट आदि अनेक रूपों में अनुभव करते हैं ।

क्रियायोग के अभ्यास में साधक पैर की अँगुली से सिर तक स्वरूप में प्रकट होने वाली विभिन्न क्रियाओं से जैसे-जैसे जुड़ने का अभ्यास करता है, वैसे-वैसे वह

ब्रह्माण्ड में होने वाली क्रियाओं से जुड़ने लगता है । स्वरूप में प्रकट होने वाली क्रियाओं से दूरी की शून्यता स्थापित होने पर मनुष्य ब्रह्माण्ड में होने वाली प्रत्येक क्रिया से शाश्वत् रूप में जुड़ा है, इस सत्य का अनुभवजन्य ज्ञान प्राप्त कर लेता है । इसी समय यह भी स्पष्ट हो जाता है कि हम और ब्रह्माण्ड दो नहीं हैं । दो का अस्तित्व नहीं है । अस्तित्व केवल एक है । एक की अनुभूति अद्वैत की अनुभूति है तथा अद्वैत अनुभूति को सत्य की अनुभूति कहा गया है । मनुष्य जब तक दो का अनुभव करता है अर्थात् जब तक उसे यह अनुभव होता है कि हम तथा सूर्य, चाँद, पृथ्वी, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु आदि समस्त रचनाएँ अलग-अलग हैं, तब तक वह असत्य की अनुभूति में है । असत्य अनुभूति को ही माया की अनुभूति कहा गया है जो सम्पूर्ण कष्टों का कारण है । इस माया को ही अविद्या कहते हैं ।

क्रियायोग अभ्यास के द्वारा साधक माया से ऊपर उठ जाता है । माया से ऊपर उठने पर तत्व ज्ञान की प्राप्ति होती है । तत्व केवल एक है जिसे परमतत्व, (सत् तत्व) कहा गया है । ब्रह्माण्ड की समस्त रचनाएँ- सूर्य, चाँद, पृथ्वी, तारामण्डल, ग्रह-नक्षत्र, आकाशगंगा, आसमान, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, मानव, देवी-देवता आदि एक ही परम तत्व का प्रकाश हैं । इस सत्य का अनुभव होने पर रचना, रचनाकार तथा रचना करने की क्रिया के बीच दूरी शून्य है, का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है । यह आत्मज्ञान की पूर्णावस्था है जिसके प्रकट होने पर साधक इच्छानुसार ब्रह्माण्ड की किसी भी रचना का सृजन, सुरक्षा व परिवर्तन करने की अलौकिक शक्ति से सम्पन्न होता है । ब्रह्माण्ड का कण-कण उसकी इच्छा से चलायमान होता है ।

14- क्रियायोग सुप्राचीनतम एवं नवीनतम आध्यात्मिक विज्ञान ...

क्रियायोग एक सुप्राचीनतम एवं नवीनतम आध्यात्मिक विज्ञान है जो काल के प्रभाव से विलुप्त हो गया था । वर्तमान आरोही द्वापर युग में इसे योगिराज श्री श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय जी ने अपने परम गुरू श्री श्री महावतार बाबा जी से प्राप्त किया । श्री श्री महावतार बाबा जी ने अपने जन्म-जन्मान्तर के शिष्य श्री लाहिड़ी महाशय जी को 1861 ई० में हिमालय अंचल में स्थित रानी खेत के द्रोणगिरी पर्वत पर क्रियायोग की दीक्षा देते हुए कलिकाल के गहन अज्ञानमय अंधकार में लुप्त क्रियायोग को पुनरुज्जीवित किया । अमरगुरु श्री श्री महावतार बाबा जी ने कहा था कि क्रियायोग वही सनातन विज्ञान है जिसे योगेश्वर श्री कृष्ण ने प्राचीन ज्ञानी सूर्य को दिया था । सूर्य से यह ज्ञान मनु तथा मनु से इच्छवाकु को प्राप्त हुआ । इच्छवाकु से यह ज्ञान राजर्षियों को प्राप्त हुआ तत्पश्चात् काल के प्रभाव से यह ज्ञान लुप्त हो गया ।

इस प्रकार श्री श्री महावतार बाबा जी के कृतित्व तथा श्री श्री लाहिड़ी महाशय जी की तपस्या से क्रियायोग की अमर गंगा पुनः प्रवाहित होने लगी तथा अनेक साधक व शिष्यगण इस पवित्र मंदाकिनी में स्नान करके उच्च आध्यात्मिक अवस्था को प्राप्त किये ।

15- क्रियायोग गीता में वर्णित अग्निहोत्र

क्रियायोग को गीता, बाइबिल, कुरान, गुरुग्रंथ साहिब, कबीर वाणी, वेद, शास्त्र, आधुनिक विज्ञान, जीवन जीने के सामान्य सरल नियम आदि किसी के भी द्वारा समझा जा सकता है । आइए ... यहाँ क्रियायोग को श्रीमद्भगवद्गीता के द्वारा समझें- क्रियायोग गीता में वर्णित अग्निहोत्र है । अग्निहोत्र का अभिप्राय बाहर आग जलाकर उसमें घी, तेल, जड़ी-बूटियाँ आदि डालकर हवन करना नहीं है । वास्तव में शास्त्रों में जिस अग्निहोत्र की चर्चा है, वह बाहर की अग्नि नहीं बल्कि अन्त:करण की दिव्य अग्नि है। मनुष्य के अंदर अग्नि तत्व समत्व शक्ति के रूप में है । क्रियायोग साधना के द्वारा स्वरूप में समत्व की स्थापना, अग्निहोत्र करना है जिससे मानव स्वरूप ज्ञान की दिव्य ज्वाला से पावन हो जाता है । ऐसी अवस्था में स्वरूप में अनन्त आनन्द व अलौकिक शक्ति प्रकट होती है जिसे अग्निहोत्र में स्वाहा के रूप में वर्णित किया गया है ।

''स्वाहा''

'स्व' में लीन होने पर प्राप्त अनन्त आनन्द का प्रतीक

''स्वाहा'' शब्द 'स्व' और 'आहा' के संयोग से बना है । स्वरूप को स्व तथा स्वरूप में एकाग्रता के द्वारा प्राप्त अनन्त आनन्द की अहलादकारी अनुभूति को आहा के रूप में वर्णित किया जाता है । इस प्रकार स्वाहा स्व में लीन होने पर प्राप्त अनन्त आनन्द की अवस्था को व्यक्त करता है । क्रियायोग का ज्ञान लुप्त होने पर जब मनुष्य वास्तविक अग्निहोत्र व उससे प्राप्त शाश्वत् आनन्द को विस्मृत कर गया तो वह उसका प्रतीकात्मक अभ्यास आग जलाकर तथा उसमें घी, तेल आदि

डालकर और शाब्दिक रूप में स्वाहा, स्वाहा बोलकर करने लगा । किसी भी पूजा पद्धति का प्रतीकात्मक अभ्यास गलत नहीं है परन्तु प्रतीकात्मक अभ्यास बच्चों के खेल की तरह है जिससे सत्य की अनुभूति संभव नहीं है । आज आवश्यकता है कि हम क्रियायोग साधना के द्वारा पूजाओं, साधनाओं आदि के प्रतीकात्मक स्वरूप में निहित सत्य का साक्षात्कार करें ।

क्रियायोग सर्वोच्च तप

क्रियायोग का अभ्यास उच्चतम तप है जिसमें साधक स्वरूप में प्रकट होने वाले विभिन्न परिवर्तनों को परमात्मा की शक्ति, ब्रह्म शक्ति, सृजनात्मक शक्ति, अमरता की अनुभूति आदि के रूप में स्वीकार करते हुए उसमें गहन एकाग्रता प्रकट करता है । एकाग्रता का स्वरूप अनन्त होने पर आत्मज्ञान और परमात्म ज्ञान दोनों की प्राप्ति हो जाती है और मनुष्य सम्पूर्ण कष्टों से मुक्त हो जाता है ।

क्रियायोग प्राचीन काल में वर्णित यज्ञ

16- क्रियायोग प्राचीनकाल में वर्णित यज्ञ है । यज्ञ तथा क्रियायोग की परिभाषा एक है ।

यज्ञ का सूत्र- तपः स्वाध्याय ब्रह्मनिधानानि यज्ञः ।।
क्रियायोग का सूत्र- तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ।।
--पतंञ्जलयोगदर्शनम् 2:1

तप, स्वाध्याय तथा ब्रह्म में ध्यान को यज्ञ कहा गया है तथा तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधानानि का अभ्यास क्रियायोग है । वास्तव में यज्ञ तथा क्रियायोग का स्वरूप एक है । प्राचीन काल में क्रियायोग का अभ्यास यज्ञ के नाम से कराया जाता था । कालान्तर में मानव मस्तिष्क के ज्ञान का लोप होने पर यज्ञ का मौलिक स्वरूप विकृत होने लगा । लोग यज्ञ के नाम पर पशु बलि, नर बलि आदि हिंसात्मक क्रियाओं को करने लगे तथा ब्रह्म को भरम, भूत, पिशाच आदि समझने लगे । यज्ञ का स्वरूप दूषित होता देखकर तथा इसकी पवित्रता, गोपनीयता व सूक्ष्मता को बनाये रखने के लिए महर्षि पतंजलि ने यज्ञ को क्रियायोग तथा ब्रह्म को ईश्वर के नाम से पुनः परिभाषित किया ।

तप का वास्तविक स्वरूप - तप का अभिप्राय नंगे पैर चलना, धूप में बैठना, निर्जल व्रत रहना, अन्न न ग्रहण करना, कम से कम वस्त्र पहनना, एक पैर पर खड़े रहना आदि नहीं है । तप समत्व की अवस्था है । श्रीमद्भगवद्गीता में तप को सुख व दु:ख को समान करने के रूप में वर्णित किया गया है । सुख दु:ख को समान करने का अभिप्राय है सुख व दु:ख को सुख दु:ख न समझकर ज्ञान तत्व, शक्ति तत्व, परम तत्व, परमात्म तत्व ... की उपस्थिति के रूप में अनुभव करना ।

सुख दु:ख की सम्पूर्ण अनुभूतियों को ज्ञानतत्व के रूप में अनुभव करने का प्रथम प्रयोग अपने निकटतम क्षेत्र (पैर की अँगुली से सिर तक शरीर) में करना पड़ता है । शरीर में प्रकट होने वाले वाले समस्त परिवर्तत जो दर्द-आराम, कड़ापन-ढ़ीलापन, सुख-दु:ख आदि के रूप में अनुभव होते हैं, को सुख-दु:ख नहीं बल्कि ज्ञान तत्व के रूप में स्वीकार करने का अभ्यास करते हैं । निकटतम क्षेत्र में प्रकट होने वाले परिवर्तनों को ज्ञान के रूप में स्वीकार करते हुए उससे जुड़ने का अभ्यास करना, स्वरूप में समत्व की स्थापना है । इस अवस्था के प्रकट होने पर साधक बाहर की सुखद व दु:खद अनुभूतियों से अप्रभावित रहता है । उसका स्वरूप विराट समुद्र की तरह होता है जिसमें सुख दु:ख रूपी ज्वार भाटों के आने जाने से अंश मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता है । इस अवस्था को प्राप्त करना, तप सिद्ध करना है । उपरोक्त वर्णित ज्ञान तत्व को ही सर्वशक्तिमान तत्व, परम तत्व, शक्ति तत्व आदि अनेक नामों से जानते हैं जो परब्रह्म का गुण है ।

स्वाध्याय - स्वाध्याय का अभिप्राय है स्वयं के बारे में ज्ञान प्राप्त करना अर्थात् अपने मौलिक स्वरूप को जान लेना । तप के सिद्ध होने पर स्वत: अपने मौलिक स्वरूप (शाश्वत व अमर स्वरूप) का ज्ञान प्राप्त हो जाता है । इसलिए सच्चा तप वह है जिससे स्वाध्याय अर्थात् स्वरूप ज्ञान प्राप्त होता है ।

ईश्वरप्रणिधानानि- ईश्वरप्रणिधानानि का अभिप्राय है ईश्वर से एकात्म

की अनुभूति अर्थात् अपने व परमात्मा के बीच दूरी की शून्यता का अनुभव कर लेना । स्वरूप में समत्व की पूर्ण स्थापना होने पर स्वरूप ज्ञान प्रकट होता है तथा स्वरूप ज्ञान की पूर्णता में स्थित होने पर परमात्म अनुभूति हो जाती है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि तप की पूर्णता स्वाध्याय तथा स्वाध्याय की पूर्णता ईश्वरप्रणिधानानि है । तप के सिद्ध होने पर अन्य दोनों अवस्थाओं की प्राप्ति स्वतः हो जाती है।

श्वाँस का व्यायाम प्राणायाम नहीं है ।

श्वाँस-प्रश्वाँस के
अभाव की अवस्था
प्राणायाम है जिसमें
स्थित होने पर मनुष्य के
अन्तःकरण में सत्य व
अहिंसा की स्थिति
पूर्णतया प्रकाशित हो
जाती है ।

17- क्रियायोग से प्राणायाम अवस्था की प्राप्ति

प्राणायाम का वास्तविक स्वरूप

''प्राणायाम'' शब्द प्राण तथा आयाम के संयोग से बना है । प्राण का अभिप्राय प्राण तत्व तथा आयाम का अभिप्राय गुण, स्वरूप, प्रकृति आदि से है । प्राण के सम्पूर्ण आयाम के बारे में ज्ञान प्राप्त करना, प्राणायाम है ।

प्राण को श्वाँस नहीं कहते हैं । प्राण के द्वारा श्वाँस का नियंत्रण होता है न कि श्वाँस के द्वारा प्राण नियंत्रित होता है । क्रियायोग साधना के द्वारा प्राणतत्व से जुड़े होने का जैसे-जैसे अनुभव होने लगता है वैसे-वैसे श्वाँस-प्रश्वाँस की गति कम होती जाती है तथा अन्त:करण में अनन्त शक्ति, ज्ञान, धैर्य, साहस आदि बढ़ने लगता है । प्राण से पूर्ण एकता स्थापित होने पर श्वाँस की गति शून्य हो जाती है जिसे समाधि कहा गया है । ऐसी अवस्था में साधक बिना श्वाँस गति, नाड़ी गति, हृदय गति आदि के जीवित रहता है तथा वह परम जागरण की अवस्था- आत्मज्ञान, की प्राप्ति कर लेता है । इस अवस्था के प्रकट होने पर मनुष्य के अंदर अलौकिक शक्तियाँ प्रकाशित होने लगती हैं । वह बिना इन्द्रियों के सम्पूर्ण कर्मों को संपादित कर लेता है जिसे इन्द्रियातीत अनुभूति (इन्द्रियों के परे की अवस्था) कहा गया है ।

इन्द्रियातीत वह अवस्था है जिसमें साधक इन्द्रियों की सीमित अनुभूति से ऊपर उठकर असीमता के उस धरातल पर स्थित होता है जहाँ उसे देखने के लिए आँखों की आवश्यक्ता नहीं पड़ती है, चलने के लिए पैरों की आवश्यक्ता नहीं पड़ती है । वह बिना आँखों के देखता, बिना कानों के सुनता, बिना पैरों के चलने की अलौकिक शक्ति से विभूषित होता है । इसी अवस्था को शास्त्रों में विभिन्न सिद्धियों- अणिमा, गरिमा, लघिमा आदि के रूप में वर्णित किया गया है ।

प्रचलित तथाकथित प्राणायाम जिसमें श्वाँस को बलपूर्वक लेने, रोकने व निकालने की क्रिया का अभ्यास कराया जाता है, शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिए हाँनिकारक है । श्वाँस को बलपूर्वक लेने, रोकने व निकालने पर भय, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद्, शंका, धृणा, राग द्वेष आदि मनोविकार प्रकट होते हैं । किसी भी आत्मज्ञानी ऋषि- संत कबीर, नानक देव, ब्रह्मर्षि वेदव्यास, अगस्त मुनि, भगवान श्री राम, योगेश्वर श्रीकृष्ण, प्रभु ईसा, महावीर स्वामी, गौतम बुद्ध, स्वामी विवेकानन्द, परमहंस योगानन्द आदि ने प्रचलित प्राणायाम, आसन का आदि का अभ्यास न तो स्वयं किया और न ही किसी को करने के लिए प्रेरित किया ।

महर्षि पतंजलि के द्वारा आविष्कृत महानतम ग्रंथ- पतंञ्जलयोगदर्शनम् में प्राणायाम को इस प्रकार परिभाषित किया गया है-

तस्मिन्सति श्वाँसप्रश्वाँसयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥

बाह्य वायु का भीतर प्रवेश करना श्वाँस कहा जाता है तथा वायु

का बाहर निकलना प्रश्वाँस कहा जाता है । दोनों की स्वाभाविक गति का विच्छेद अर्थात् अभाव प्राणायाम है । अतः प्राणायाम सिद्ध होने पर श्वाँस-प्रश्वाँस की गति स्वतः शून्य हो जाती है और साधक दिव्य चेतना जिसे आत्मानुभूति (अमरत्व की अनुभूति) कहा गया है, में लीन रहता है ।

श्री श्री परमहंस योगानन्द जी ने अपनी आत्मकथा- योगी कथामृत में प्राणायाम के इसी स्वरूप को परिभाषित करते हुए कहा है-

Patanjali refers a second time to the life control or Kriya technique thus: "Liberation can be accomplished by that Pranayama which is attained by disjoining the cource of inspiration and expiration. "

अनेक मार्गभ्रष्ट उत्साहोन्मत्त व्यक्तियों के द्वारा सिखाये जाने वाले अवैज्ञानिक श्वाँस व्यायामों से क्रियायोग का कोई संबंध नहीं है । फेफड़ों में श्वाँस को बलपूर्वक रोकने की चेष्टा अप्राकृतिक तथा निस्संदिग्ध रूप से कष्टकर भी है । इसके विपरीत आरम्भ से ही क्रियायोग के अभ्यास के बाद शांति की भावना और मेरुदण्ड में पुनरुज्जीवनी शक्ति के प्रभाव की सुखद अनुभूति प्राप्त होती है । तेज या विषम श्वाँस भय, काम या क्रोध जैसे हाँनिकारक भावावेगों की अवस्था का सहचर है । -- योगी कथामृत से लिया गया संक्षिप्त अंश

18- क्रियायोग से आसन अवस्था की प्राप्ति...

आसन- सुख की स्थिर अवस्था

आसन की स्थिति का अभिप्राय है सुख की स्थिर अवस्था । सुख की स्थिर अवस्था तभी प्राप्त होती है जब मनुष्य को अनुभव हो जाता है कि उसका अस्तित्व अमर है । अमर स्थिति की अनुभूति करना ही अहिंसा में प्रतिष्ठित होना है ।

आसन के नाम पर प्रचलित क्रियाएँ जिसमें शरीर को तोड़ने मरोड़ने व जिमनास्टिक से संबंधित क्रियाओं का अभ्यास कराया जाता है, शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिए हाँनिकारक है । इन क्रियाओं को ज्यादा करने पर हृदय की बीमारी, गठिया, नसों की कमजोरी, डर आदि प्रकट होता है । तथाकथित आसन का अभ्यास किसी भी आत्मज्ञानी ऋषि- संत कबीर, नानक देव, लाहिड़ी महाशय आदि ने न तो स्वयं किया और न किसी को करने के लिए कहा ।

19- क्रियायोग
प्राण व अपान वायु का हवन

प्राण व अपान वायु का हवन
सर्वोच्च यज्ञ ।।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणे पानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुदध्वा प्राणायामपरायणाः ॥
--श्रीमद्भगवद्गीता 4:29

श्रीमद्भगवद्गीता में क्रियायोग को प्राण व अपान के हवन के रूप में भी वर्णित किया गया है- अपाने जुह्वति प्राणं प्राणे पानं तथापरे। प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणा: ।। प्राण वायु का अपान वायु तथा अपान वायु का प्राण वायु में हवन के द्वारा प्राण अपान की गति अवरुद्ध हो जाती है जिससे साधक प्राणपरायण हो जाता है । मनुष्य के स्वरूप में प्रवाहित होने वाली विश्वव्यापी प्राणशक्ति जिससे 24 तत्व- चित्त, अहंकार, बुद्धि, मन, 10 इन्द्रियाँ, 5 तन्मात्राएँ, 5 पंचीकृत पंचतत्व क्रियाशील होते हैं, प्राण है। प्राण की वह धारा जो शरीर से बाहर निकलती रहती है, अपान है ।

क्रियायोग अभ्यास के द्वारा शरीर व मन के बीच दूरी की शून्यता स्थापित होने पर शरीर से बाहर निकलने वाली अपान वायु का शरीर में प्रवाहित होने वाली प्राण वायु से मिलन होता है । इस प्रकार प्राण व अपान का एक दूसरे में हवन होता है । अपान का प्राण में हवन के द्वारा अपान का प्राण में रूपान्तरण हो जाता है । तत्पश्चात् साधक प्राण की अविरल धारा को शरीर से सिर रीढ़ की तरफ प्रवाहित करता है तथा रीढ़ में

नीचे से ऊपर उठाते हुए आज्ञाचक्र के मूल केन्द्र कूटस्थ में विलीन कर देता है । ऐसी अवस्था में प्राण व अपान दोनों धाराओं की गति अवरुद्ध हो जाती है ।

क्रियायोग साधना के द्वारा प्राण व अपान की गति के स्थिर होने पर साधक प्राण परायण हो जाता है। प्राण परायण का अभिप्राय है प्राण से पूर्ण संयुक्तावस्था । इस स्थिति में मनुष्य अपने स्वरूप को सत्य व अहिंसा के रूप में अनुभव करता है ।